बहुमुखी प्रतिभा के धनी बिहारी

*डॉ. राजेश कुमार

बिहारी रीति काल के प्रमुख रीति सिद्ध कवि थे। जयपुर के राजा सवाई जयसिंह के दरबारी कवि बिहारी के काव्य में रीति (श्रृंगार) नीति और भक्ति तीनों की धाराओं का सामंजस्य प्रभावपूर्ण ढंग से देखा जा सकता है। इस पाठ में हम आपको बिहारी के जीवन और उसके साहित्य से भी परिचित कराएँगे। संवत् 1692 में बिहारी ने जिस सतसई नामक ग्रन्थ का प्रणयन प्रारम्भ किया था वह लगभग संवत् 1719 में पूरा हो पाया। 727 दोहों की यह रचना जिस विशेष दोहे के कारण प्रारम्भ हुई वह दोहा है –

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।

अली कली ही सौं बंध्यो, आगे कौनु हवाल।।

बिहारी के रीति, नीति, भक्ति के इन्हीं दोहों के दार्शनिक तत्वों पर विचार एवं विवेचन किया जाएगा। साथ ही उनकी काव्य भाषा के विविध पक्षों की जानकारी भी प्राप्त होगी। बिहारी सतसई के कुछ विशिष्ट दोहों का वाचन एवं व्याख्या भी इस उद्देश्य से दी गई है कि आप दोहों के अर्थ एवं व्याख्या करना जान सकें। आइये अब हम बिहारी तथा उनके साहित्य पर विस्तार से चर्चा करें।

युग परिवेश :

कवि कोई भी हो जिस परिवेश में वह रहता है उसकी उपेक्षा करके जीना उसके लिए सम्भव नहीं हो पाता। यों भी मनुष्य सामाजिक प्राणी है और समाज से टूट कर यदि कोई अपने अस्तित्व को कायम रखना चाहता है तो वह निश्चित रूप से असफल होता है। समाज से जुड़े रह कर अपने अस्तित्व और अपनी अवधारणाओं के प्रति सतर्क रहना तो समझ में आता है किन्तु समाज निरपेक्ष रह कर जीवन यापन करना असम्भव भले ही न हो कठिन निश्चित रूप से होता है। यह बात इसलिए कही जा रही है कि अनेक समीक्षकों ने बिहारी पर यह आरोप लगाया है कि वे समाज से कटे हुए थे। उनके दोहे, रंगरलियों, विलास भावनाओं और नायक–नायिकाओं की प्रणय–क्रिड़ाओं का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जो प्रायः सभ्य समाज में दिखाई नहीं देते। परन्तु बिहारी जिस परिवेश में रहे, जिस समाज को उन्होंने जिस रूप में देखा उसकी उपेक्षा करना उनके लिए सम्भव नहीं था। बिहारी ने स्पष्टतः अपने समय की किसी समस्या का निरूपण अपने दोहों में नहीं किया किन्तु उनके दोहों में उस समय के परिवेश की पनप रही वृत्तियों, विकृतियों और स्थितियों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। एक कवि तो वह होता है जो सीधे समाज से जुड़ कर कविता करता है और एक कवि वह होता है जो व्यक्ति के माध्यम से समाज का सूक्ष्म निरीक्षण करता है तथा सांकेतिक शैली में उसे अभिव्यक्ति प्रदान करता है। यदि निष्पक्ष रूप से देखा जाए तो बिहारी एक ऐसे कलाकार हैं जो एक कोने में बैठ कर समाज को ध्यानपूर्वक देखते रहे। अपने परिवेश पर नजर गढ़ाए रहे। उसी परिवेश को जिसमें अधिकांशतः विलास भाव फैला हुआ था, अपने साहित्य में प्रस्तुत करते रहे। यही कारण है कि उन्होंने बीच–बीच में उस पथभ्रष्ट समाज को समझाने के लिए नीतिपरक बातें भी कही। भक्ति रस से पूर्ण दोहों की रचना भी की। प्रकृति की उन्मुक्त सूक्ष्म छवियाँ भी प्रस्तुत की। ऐसी स्थिति में बिहारी को समाज निरपेक्ष कहना और मानना उचित प्रतीत नहीं होता। ''बिहारी सतसई'' का मूल्यांकन करने से पूर्व हमें यह जानना आवश्यक है कि बिहारी जिस युग में थे उस समय का समाज, धर्म, राजनीति और साहित्य की स्थिति कैसी थी? लोगों की मनःस्थिति कैसी थी? वे किस प्रवाह में बहे जा रहे थे? ये सभी बातें जानना बिहारी को जानने से पहले आवश्यक हैं। क्योंकि इसी परिवेश में उन्होंने अपने साहित्य का सृजन किया था।

बिहारी का जन्म सम्राट अकबर के राज्यकाल (सं. 1613 से 1662) के अन्तिम दिनों में हुआ था। उनका अधिकांश समय जहाँगीर और शाहजहाँ के शासनकाल में व्यतीत हुआ। वे मुगलों से जुड़े रहे। अकबर से लेकर औरंगजेब के राज्यकाल तक का समय उन्होंने देखा था। अकबर के समय में भारत के विशाल राज्य की नींव स्थापित हो चुकी थी। अकबर की दूरदर्शिता से मुगलों के कट्टर शत्रु राजपूत मुगलों के परम मित्र हो गए थे। परिणाम यह हुआ कि हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति एक हो गई थी। अकबर के उदार व्यक्तित्व के कारण ही यह सब सम्भव हो पाया। मुगल बादशाहों ने साम्राज्य की शांति और सुरक्षा के निमित्त राजपूत राजाओं की राजकुमारियों से वैवाहिक

सम्बन्ध स्थापित किए थे। आमेर के राजा भारमल की पुत्री अकबर से ब्याही गई थी। भारमल के पुत्र ने भी अपनी कन्या का विवाह जहाँगीर से किया था। इन वैवाहिक सम्बन्धों के कारण राजपूत राजाओं को मुगल सेना में उच्च पद प्राप्त हुए थे। मानसिंह और जयसिंह मुगल साम्राज्य के प्रधान सेनापति थे, परन्तु अकबर के पश्चात् धीरे–धीरे स्थिति में बदलाव आता गया। बिहारी ने अपनी सतसई में ऐसे दोहों को प्रस्तुत किया है जिनसे यह स्पष्ट होता है कि राजा जयसिंह ने मुगलों के लिए बहुत कुछ किया था। एक बार शाहजहाँ की आज्ञानुसार औरंगजेब ने बलक पर चढ़ाई की थी। उसके साथ राजा जयसिंह भी थे। उस चढ़ाई में उन्हें सफलता तो नहीं मिली किन्तु घोर संकट का सामना अवश्य करना पड़ा। संकट की इस घड़ी में शत्रुओं से घिरी हुई सेना को सुरक्षित बचा लाना जयसिंह का ही काम था –

यों दल काढ़े बलक तैं तैं, जयसिंह भुवाल।

उदर अधासुर कैं परै ज्यों हरि गाइ, गुवाल।

डॉ. नगेन्द्र ने इस विषय में लिखा है – 'संवत् 1700 में भारत के सिंहासन पर सम्राट शाहजहाँ आसीन था, मुगल–वैभव अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच चुका था... जहाँगीर ने जो साम्राज्य छोड़ा था, शाहजहाँ ने उसकी और भी श्री–वृद्धि एवं विकास कर लिया था। दक्षिण में अहमदनगर, गोलकुण्डा और बीजापुर राज्यों में बुगलों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था और उत्तर पश्चिम में संवत् 1796 में कंधार का किला मुगलों के हाथ में आ गया था। अब्दुल हमीद लाहौरी के अनुसार उसका साम्राज्य सिन्ध के लाहिरी बन्दरगाह से लेकर आसाम के सिलहट तक और अफगान प्रदेश के बिस्त के किले से लेकर दक्षिण में औसा तक फैला हुआ था। देश में अखण्ड शांति थी। हिन्दुस्तान की कला अपने चरम वैभव पर थी। मयूर सिंहासन और ताजमहल का निर्माण हो चुका था।' कहने का अभिप्राय यह है कि अकबर ने राजपूतों से सम्बन्ध बनाने की जिस नीति को अपनाया था वह जहाँगीर और शाहजहाँ के शासनकाल तक मधुर परिणाम देती रही। हाँ बाद में जहाँगीर और शाहजहाँ की विलासिता और अपव्यय के परिणामस्वरूप मुगल साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया था। मुगल कालीन राजनैतिक व्यवस्था निरंकुश राजतंत्रीय थी। उस समय शासक ही राष्ट्र का विधाता होता था। सम्पूर्ण शक्तियाँ शासक के हाथ में होती थीं। शासक के विजातीय होने के कारण असहिष्णुता से मिल कर निरंकुशता और बढ़ जाती थी। इस सब का प्रभाव साहित्यकार पर पड़ना स्वाभाविक था। यदि हम इस पृष्ठ भूमि में बिहारी के युग पर दृष्टिपात करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि मुगल शासन का अधिकांश भाग इनसे सम्बन्धित है। मुगल शासन का जो भाग बिहारी के युग से सम्बन्धित था वह राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में शांति और सुव्यवस्था का काल कहा जा सकता है जब राज्य में शांति और सुव्यवस्था होती है तब राज शक्तियाँ साहित्य, कला, संस्कृति के प्रति आकर्षित होती थी। राज–दरबारों में इसी भावना से कवि कलाकारों का सम्मान होता था। अकबर के दरबार में कवियों, विद्वानों और कलाकारों का सम्मान होना यह प्रमाणित करता है कि राजनैतिक सुव्यवस्था के अभाव में साहित्य और कला के क्षेत्र में प्रगति नहीं हो सकती।

रीति कालीन **समाज** में सामंतवादी व्यवस्था थी। इसी व्यवस्था के कारण सम्राट का स्थान सर्वोपरि था। इसके पश्चात् उच्च वर्ग में राजा, अधिकारी और सामंत आते थे। इन लोगों को समाज में न केवल सम्मान प्राप्त था बल्कि कुछ विशिष्ट अधिकार भी प्राप्त थे। एक दूसरा वर्ग शाही कर्मचारियों का था जिसे मध्यवर्ग के अन्तर्गत रखा जा सकता था। व्यापारी, साहूकार आदि भी इसी वर्ग में आते थे। निम्न वर्ग में कृषक, मजदूर आदि को रखा जाता था। समग्रतः यह कहा जा सकता है कि समाज दो ही वर्गों में बँटा था, एक उत्पादक वर्ग दूसरा उपभोक्ता वर्ग। शाही दरबार के अन्तर्गत सुख, समृद्धि और विलास का बोलबाला रहता था। वे विलासिता में डूबे रहते थे। उनके दरबारों में सुरा और सुन्दरियों की बहार रहती थी। जहाँगीर के बारे में तो प्रसिद्ध है कि वे आध सेर कबाब और एक सेर शराब के बदले में अपनी पूरी सल्तनत नूरजहाँ को दे चुके थे। अकबर अपेक्षाकृत कम विलासी थे। मनोरंजन के साधन यही सुरा और सुन्दरी हुआ करते थे। मुगल परिवारों में रत्नों और मणियों के अतिरिक्त सुन्दर स्त्रियाँ भी रत्नो की श्रेणी में आती थीं। रूप सौन्दर्य से भरी हुई स्त्रियाँ भोग–विलास का माध्यम थीं। विलासिता इतनी अधिक थी कि उस समय के अधिकांश कवियों ने अपने काव्य में काम तत्त्व को प्रधानता प्रदान की। इस विलासिता का प्रभाव सम्पूर्ण समाज पर पड़ रहा था। नारियों ने भी लज्जा और मर्यादा को त्याग कर अपने को ऐसे ही परिवेश में डाल लिया था। डॉ. नगेन्द्र ने ठीक ही लिखा है कि 'सचमुच इस समय के प्रासाद इन्हीं लोगों की हड्डियों पर खड़े थे, इन्हीं के आँसू और रक्त की बूँदें जम कर अमीरों के मोती और लालों का रूप धारण कर लेती थी। **2.** तत्कालीन परिवेश में स्थिति यह हो गई थी कि श्रमिक वर्ग उपभोक्ता वर्ग के हाथों का खिलौना बना हुआ था। सामाजिक दृष्टि से हिन्दू और मुस्लिम दोनों स्वतंत्र थे। यह अलग बात है कि जाति भेद बढ़ने लग गया था परन्तु हिन्दू अपने समस्त त्यौहारों को मनाने के लिए स्वतंत्र थे। अच्छे मुगल सम्राटों ने भेद–भाव रहित स्वतंत्र जीवन बिताने की छूट सामाजिकों को दे रखी थी किन्तु इसके विपरीत जो कामुक, विलासी और स्वार्थी मुगल शासक थे उन्होंने शोषण और अत्याचारों को बढ़ावा दे रखा था। निम्न वर्ग प्रायः उपेक्षित ही था। इन सामाजिक स्थितियों को उस समय के कवि कलाकारों ने देखा और अनुभव किया। बिहारी भी इस परिवेश के प्रत्यक्षदृष्टा रहे और इन विषयों पर अपनी कलम चलाई।

बिहारी कालीन **धार्मिक** परिवेश भी उपेक्षणीय नहीं है। 17वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी तक प्रायः सभी प्रकार के प्रमुख आन्दोलन धार्मिक क्षेत्र में अपनी सफलता प्राप्त कर चुके थे। ये धार्मिक आन्दोलन 13वीं शताब्दी से लेकर 16वीं शताब्दी तक अपनी पराकाष्ठा को

प्राप्त कर चुके थे। इस प्रकार इन तीन सौ वर्षों का समय धार्मिक आन्दोलनों का युग था। हिन्दी साहित्य विशेषकर जिन धार्मिक मतों से प्रभावित हुआ है वे हैं संत मत, सूफी मत, राम भक्ति और कृष्ण भक्ति। इसी धार्मिक परिवेश का प्रभाव तत्कालीन साहित्यकारों पर भी स्पष्ट देखा जा सकता है। इसी समय में राधा और कृष्ण भक्ति अपने चरमोत्कर्ष पर थी। चैतन्य, बल्लभ, राधाबल्लभी, हरिदासी और निम्बार्क आदि सम्प्रदायों ने भी इस काल में राधा के व्यक्तित्व को प्रमुख रूप से स्वीकार किया। विक्रम की 16वीं और 17वीं शताब्दी में भारत पर मुगल शासकों का साम्राज्य था और यही वह काल था जब समाज में अनेक मत और मतान्तर प्रचलित हो रहे थे। इस प्रकार धार्मिक परिवेश पर्यापत समृद्धिपूर्ण दिखाई देता था। बिहारी भी अपनी सतसई में राधा–कृष्ण के सम्बन्ध में स्थान–स्थान पर संकेत करते हैं। रीति काल को सामान्यतः विकृतियों का काल माना गया है। यह सहज ही स्वीकार किया जा सकता है कि रीति काल में नैतिकता हवा हो चुकी थी और धर्म का एक स्वच्छ स्वरूप नहीं रहा था। धर्म न केवल अनेक शाखाओं और प्रशाखाओं से जुड़ कर जीवन को रस प्रदान करने में अक्षम था बल्कि स्थिति यहाँ तक थी कि धर्म भी पाखण्ड और विलासिता से जुड़ने लगा था। डॉ. भागीरथ मिश्र ने लिखा है कि 'वैष्णव धर्म में विशेष रूप से बल्लभ सम्प्रदाय की जिस माधर्योपासना में सभी निमज्जित थे वह अब राधा–कृष्ण के स्थूल मांसल श्रृंगार का रूप धारण करने लगी थी। अब तो 'राधिका–कन्हाई' स्मरण मात्र थे। राधा तो परकीया नायिकाओं के विभिन्न रूपों में प्रस्तुत होती थी। ब्रह्म की इस आल्हादिनी शक्ति राधा के केवल 'तन की झाँई' ही 'हरि दुति' के लिए पर्याप्त थी। कृष्ण और राधा की 'तन की द्युति' पर किया जाने वाला अनुराग तीर्थराज प्रयाग से श्रेष्ठ माना जाता था।' बिहारी ने लिखा है –

मेरी भव बाधा हरो राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परै स्याम हरित दुति होइ।।

धर्म के क्षेत्र में भ्रष्टाचार बढ़ने लगा था। देवालय भोग–विलास के केन्द्र बन गए थे। बिहारी सतसई में ऐसे अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। बिहारी ने तो यहाँ तक लिखा है कि रुचि पुराण में नहीं पौराणिक में रहती थी। भक्ति में से भाव तत्व लुप्त हो गया था तथा स्थूल काम चेष्टाओं में ही भक्तिपरक ग्रन्थों की अभिव्यक्ति की जाने लगी थी। कृष्ण की लीलाओं का आध्यात्मिक भाव समाप्त हो गया था और वे रसिक नायक के रूप में देखे जाने लगे थे। कृष्ण सम्प्रदाय के अलावा अन्य सम्प्रदायों में भी स्थिति कमोबेश ऐसी थी। इस प्रकार कह सकते हैं कि बिहारी पर उस युगीन परिवेश का सीधा–सीधा असर दिखाई देता है जो उसके साहित्य में स्पष्ट रूप से झलकता है।

9.3 बिहारी और उसका साहित्य :

9.3.1 जीवन परिचय :

प्राप्त तथ्यों के आधार पर सभी यह स्वीकार करते हैं कि बिहारी का जन्म विक्रम संवत् 1652 में ग्वालियर के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बाल्यावस्था बुंदेलखण्ड में बिता कर ये मथुरा में अपनी ससुराल में आकर बस गए थे। बिहारी के कुल और उनके पिता को लेकर साहित्येइतिहासकार एक मत नहीं हैं। कुछ साहित्यकारों का मानना है कि बिहारी सनाढ्य ब्राह्मण थे और रीति काल के प्रसिद्ध आचार्य केशव राय के पुत्र थे। जबकि कुछ अन्य विद्वानो का यह मानना है कि वे माथुर ब्राह्मण थे तथा केशवदास के शिष्य थे। मिश्र बन्धुओं के अनुसार वे 'ककोर' कुल में उत्पन्न हुए थे। उन्होंने जनश्रुतियों के आधार पर कृष्ण कवि को बिहारी का पुत्र माना है। शिवसिंह सेंगर, महाकवि अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' तथा डॉ. ग्रियर्सन ने बिहारी को माथुर चौबे तथा चतुर्वेदी वंश में उत्पन्न माना है। अन्तिम मत के अनुसार बिहारी 'घरबारी' वंश में उत्पन्न माने जाते हैं। कुछ विद्वानों ने समस्त उपर्युक्त मान्यताओं को नकारते हुए बिहारी को सनाढ्य ब्राह्मण ही बताया है। इसके पीछे शायद यह तर्क रहा है कि वे उन्हें आचार्य केशवदास का पुत्र सिद्ध करना चाहते हैं। बिहारी कवि केशवदास के पुत्र नहीं थे, यह बात स्पष्ट है। हाँ यह अवश्य है कि उनके अपने दोहे में भी केशवराय का नाम अवश्य आया है। वे कहते हैं कि –

प्रगट भए द्विजराजकुल सुबस बसे ब्रज आइ।
मेरो हरौ कलेसु सब केसौ कैसौ राइ।।

इस दोहे के आधार पर कतिपय विद्वान बिहारी को रीति काल के प्रसिद्ध कवि केशवदास का पुत्र मानते हैं। कुछ विद्वानों का मत इसके विपरीत भी है। 'केसौ राइ' शब्द से स्पष्ट नहीं हो पाता कि ये आचार्य केशवदास ही हैं अथवा कोई दूसरे केशवराय। हालांकि उनके पिता का नाम भी यही था जिसकी पुष्टि बिहारी सतसई के प्रथम टीकाकार ने 'रस चन्द्रिका' में दे दी है। उनके दीक्षागुरु स्वामी नरहरिदास थे। जिनका जन्म गुढ़ौ नामक ग्राम में हुआ था और कालान्तर में ब्रज भूमि में आकर बस गए थे। संवत् 1675 में सम्राट जहाँगीर ने ब्रज प्रदेश की यात्रा की। इसी समय वे स्वामी नरहरिदास से भी मिले। स्वामी जी की कीर्ति दूर–दूर तक फैली थी। सम्राट के साथ युवराज शाहजहाँ भी थे। उसी समय संयोगवश बिहारी भी नरहरिदास के यहाँ पधारे। नरहरिदास ने बिहारी की प्रतिभा का परिचय शाहजहाँ को दिया। शाहजहाँ बिहारी के साहित्य एवं संगीत कला पर मुग्ध हो गया। परिणामस्वरूप बिहारी को मुगल दरबार में स्थान प्राप्त हो गया।

श्री नरहरि नरनाह कौ दीनी बाँह गहाइ।

सगुन आगरै आगरें रहत आह सुख पाइ।।

कुछ समय पश्चात् साम्राज्ञी अर्जुमन्दबानो के गर्भ से राजकुमार दारा का जन्म हुआ। पुत्र–जन्म के महोत्सव पर शाहजहाँ ने भिन्न–भिन्न रजवाड़ों के 52 राजाओं को आमंत्रित किया। इस अवसर पर बिहारी ने आगत राजाओं के समक्ष अपने साहित्य और काव्य का प्रदर्शन किया। जिससे प्रभावित हो आगत राजाओं का भी बिहारी को विशेष स्नेह प्राप्त हुआ। बिहारी ने जब दरबार में अपना काव्यपाठ किया तो बादशाह सहित समस्त राजाओं ने उसे स्वर्ण मुद्रिकाओं से ढक दिया और प्रसन्न हो बिहारी को वार्षिक वृत्ति देना प्रारम्भ कर दिया। बिहारी अधिकतर राजधानी में ही रहते थे परन्तु समय–समय पर वृत्ति लेने वे दूसरे राज्यों में भी जाते थे। यह सिलसिला अधिक नहीं चल पाया। शाहजहाँ ने गद्दीनशीं होते ही बिहारी को उपेक्षित कर दिया और बिहारी मथुरा आकर रहने लगे। संवत् 1692 में बिहारी अपनी वार्षिक वृत्ति लेने जयपुर गए। इस समय यहाँ पर जयसिंह का राज्य था। राजा जयसिंह ने नया–नया विवाह किया था और नवोधा के प्रेम में डूब कर अपनी पटरानी अनन्तकुँवरि और राज्य की गतिविधियों को भुला दिया था। पटरानी को जब यह ज्ञात हुआ कि बिहारी आए हुए हैं तो उन्होंने बिहारी के सामने राज्य की करुण दशा का वर्णन किया। महारानी जानती थी कि बिहारी ही राजा को सही मार्गदर्शन दे सकते हैं। चूँकि बिहारी मुगल सम्राट के कवि हैं इसलिए भी राजा उनकी बात का उल्लंघन नहीं कर सकते। अतः रानी और राज्य की करुण दशा देख कर बिहारी ने एक दोहा लिख कर राजा के पास भेजा। वह दोहा था –

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिकाल।

अली कली ही सौं बंध्यो, आगै कौनु हवाल।।

महाराज जयसिंह ने दोहे को पढ़ कर उसके रचियता की खोज कराई। जब उन्हें बिहारी का पता चला तो मुगल सम्राट तक अपनी विलासिता की बात पहुँच जाने के भय से उन्होंने विलासित छोड़ दी। शीघ्र राजकार्य की ओर ध्यान दिया तथा बिहारी को सम्मानित कर और दोहे लिखने की प्रार्थना की तथा प्रत्येक दोहे पर एक स्वर्ण मुद्रिका देने का वचन दिया। राजा जयसिंह से इतना स्नेह और सम्मान पाकर बिहारी यहीं रह गए और उन्होंने अनुमानतः संवत् 1692 में सतसई नामक ग्रन्थ लिखना प्रारम्भ किया। जो संवत् 1719 में समाप्त हुआ। कुछ समय पश्चात् रानी चौहानी के गर्भ से कुँवर रामसिंह का जन्म हुआ। जिसके 7 वर्ष के होने पर शिक्षा–दीक्षा का सम्पूर्ण भार बिहारी पर ही डाल दिया गया। बिहारी ने उनको शिक्षा प्रदान करने के लिए सतसई के अलावा अन्य रचनाएँ भी की। वह प्रति अब भी उपलब्ध है जिस पर बालक कुँवर रामसिंह के हाथ से खेंची गई अनेक बाल–सुलभ रेखाएँ तथा टेढ़े–मेढ़े अक्षर अंकित हैं। संवत् 1721 में बिहारी का देहावसान हो गया। अपने जीवन के सांध्यकाल में वे पूर्ण रूप से भक्त हो गए थे। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि अपने समय के अद्‌भुत प्रतिभा सम्पन्न, रसप्रवण मेघावी कवि थे बिहारी। **उनकी एकान्तकृति 'बिहारी सतसई' उनकी अक्षय कीर्ति के लिए पर्याप्त प्रमाण स्वरूप हिन्दी में चिरस्मरणीय रहेगी।**

साहित्य एवं उसका भाव पक्ष :

बिहारी ने अपने जीवन में केवल एक ही कृति लिखी 'बिहारी सतसई'। परन्तु विक्रम संवत् 1691 में बिहारी जोधपुर के राजा जसवंत सिंह के यहाँ अपनी वार्षिक वृत्ति लेने गए थे। राजा जसवंत सिंह वीरता के साथ–साथ काव्य–कला में भी निष्णात थे। उन्होंने एक विपुलकाय अलंकार–ग्रन्थ की रचना की थी। कुछ विद्वानों का मत है कि उक्त ग्रन्थ की रचना बिहारी ने की थी न कि जसवंत सिंह ने। यदि यह सत्य है तो फिर यह भी सत्य है कि यह रचना 'सतसई' से पूर्व की रचना होगी। क्योंकि शैली की दृष्टि से यह ग्रन्थ 'सतसई' की कोटि में कदापि नहीं ठहर पाता। जोधपुर में एक विशाल 'दूहा–संग्रह' भी बताया जाता है जिसमें 15–16 सौ दोहों का संकलन है। इसके अधिकांश दोहे सतसई में भी प्राप्त हैं। सम्भवतः ये दोहे भी बिहारी कृत हैं। इसके अतिरिक्त पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने बिहारी कृत कतिपय कवित्तों का भी शोध किया है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि 'सतसई' के अतिरिक्त भी बिहारी ने विपुल साहित्य की रचना की थी।

बिहारी का काव्य अपने भाव सौन्दर्य के कारण साहित्य जगत् में अलग महत्त्व रखता है। उन्होंने श्रृंगार रस पर विशेष रूप से लिखा है परन्तु बीच–बीच में शांत रस पर भी अपनी कलम चलाई है। श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का विस्तृत विवेचन बिहारी ने किया तो भक्ति में भी भक्ति कालीन कवि से किसी भी माने में कम नहीं रहे। वहीं समाज में फैली हुई बुराइयों पर नैतिकता की बात कहते नीतिपरक साहित्य में भी उन्होंने महारत हासिल की। बिहारी के साहित्य को भक्ति, रीति और नीति की त्रिवेणी इसीलिए कहा जाता है क्योंकि उनका भाव सौन्दर्य समकालीन अन्य कवियों के भाव सौन्दर्य से कुछ अलग दिखाई देता है।

9.3.2.1 सतसई के श्रृंगार तत्व :

बिहारी के काव्य में श्रृंगार के दोनों पक्ष संयोग और वियोग का विस्तृत विवेचन हुआ है। संयोग में आलम्बन का रूप और

उसकी चेष्टाओं का वर्णन होता है दूसरे शब्दों में नख, शिख और हास–विलास वर्णन की प्रमुखता संयोग श्रृंगार में रहती है। बिहारी ने नख, शिख वर्णन में परम्परागत कोई बात नहीं छोड़ी। नख, शिख में उन्होंने सबसे अधिक ध्यान नेत्र वर्णन पर दिया है। सूर की भाँति नेत्रों पर उन्होंने उद्‌भावनाएँ भी की हैं लेकिन नेत्रों के वर्णन में भी उनका ध्यान उनकी अनिर्वचनीयता पर रहा था –

अनियारे दीरघ दृगनि, किती न तरुनि समान।

वह चिवनि औरै कछू, जिहि बस होत सुजान।।

प्रेम के संयोग पक्ष में हास–विलास, क्रीड़ा, कौतुक की कोई बात छूट नहीं पाई। कहीं नायिका नायक की पतंग की परछाईं के साथ–साथ अपने आँगन में दौड़ रही है तो कहीं उसके ऊँचे उड़ने वाले कबूतर की प्रशंसा कर रही है। कभी बातों के रस के लालच में लाल की मुरली छिपा कर उसे परेशान कर रही है तो कहीं दोनों आँख–मिचौनी खेल रहे हैं, कहीं होली की मस्ती का आनन्द ले रहे हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि बिहारी ने श्रृंगार के किसी भी पक्ष को नजरअन्दाज नहीं किया है। उन्होंने संयोग श्रृंगार में सौन्दर्य दीप्ति और कोमलता का भी विशेष ध्यान रखा है –

लिखनि बैठि जाकी छबी, गहि गहि गरब गरूर।

भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर।।

चेहरे की दीप्ति का वर्णन करते हुए उन्होंने एक जगह नायिका के सौन्दर्य की तुलना पूर्णिका मे चाँद से कर दी और इतना अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किया कि पंडित लोग भी उस चाँद की रोशनी से भ्रमित होकर पूर्णिमा का भ्रम पाल बैठे –

पत्राही तिथि पाइये, वा घर के चहुं पास।

नितप्रति पून्योई रहत, आनन ओप उजास।

सौन्दर्य के साथ–साथ बिहारी ने नायिका के सुकुमारता का भी विशेष वर्णन किया है। श्रृंगार वर्णन में बिहारी ने विपरीत रति का भी वर्णन किया है। परन्तु इसमें वे अश्लीलता के दोष से बच नहीं पाए हैं –

राधा हरि हरि राधिका, बन आए संकेत।

दम्पत्ति रति विपरीत सुख, सहज सुरत ही लेत।।

बिहारी ने संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत नायिका के अभिसार का ही बड़ा मनोरंजक वर्णन किया है। जब कोई नायिका शुक्ल पक्ष की रात्रि में चाँदनी के अन्तर्गत अपने प्रिय से मिलने जाती है तब वह शुक्लाभिसारिका कहलाती है। बिहारी ने ऐसी नायिका का वर्णन इस तरह से किया है –

जुवति जोन्ह में मिलि गई नैंक न होति लखाइ।

सौंधे के डोरैं लगी अली चली सँग जाइ।।

इसी प्रकार कृष्ण पक्ष की रात्रि में प्रिय से अभिसार करने वाली नायिका कृष्णाभिसारिका कहलाती है। बिहारी ने उसका वर्णन करते हुए कहा है –

अरी खरी सरपट पर बिधु आधे मग हेरि।

संग लगे मधुपनि लई भागति गली अँधेरि।।

अभिसार वर्णन के साथ ही बिहारी ने संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत चुम्बन, आलिंगन, परिरम्भण, दन्तक्षत, नखक्षत आदि विविध बाह्य क्रिड़ाओं का वर्णन भी किया है जिनका वर्णन यहाँ करना पाठ्यक्रम के अनुकूल नहीं है।

बिहारी ने अपने काव्य में नायक–नायिका सौन्दर्य, क्रीड़ा व्यापार के साथ–साथ मनोवैज्ञानिक सांकेतिक चित्रण भी किए हैं जिनके द्वारा नायक और नायिका इशारों ही इशारों में अपने प्रेम का इजहार कर लेते थे –

कहत, नटत, रीझत, खिजत, मिलत, खिलत लजियात।

भरे भौन मैं करत हैं, नैनन ही सौं बात।।

कहने का अभिप्राय यह है कि बिहारी के संयोग श्रृंगार में अनेक ऐसे संदर्भ हैं जो पूरी तरह से पाठक के मन में संयोग और उससे सम्बन्धित भावनाओं को जगा देते हैं। बिहारी के संयोग श्रृंगार पर टिप्पणी करते हुए डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना का यह कथन ग्राह्य है ''बिहारी ने संयोग श्रृंगार का बड़ा ही कामोद्दीपक, भावोत्तेजक, मनोरंजक एवं वासनात्मक वर्णन किया है। इसमें मर्यादा का भी उल्लंघन हो गया है और विपरीत–रति, गर्भवती नायिका की सुरति आदि के वर्णन में अश्लीलता के साथ–साथ सामाजिकता की सीमा का भी अतिक्रमण हो गया है। भले ही इन वर्णनों में मनोवैज्ञानिकता एवं यथार्थता हो, किन्तु समाज पर इनका कोई अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। कला की दृष्टि से ये वर्णन अवश्य उत्कृष्ट माने जाते हैं, किन्तु सामाजिक दृष्टि से सर्वथा हेय एवं घृणास्पद हैं, क्योंकि इनमें अमयादित श्रृंगार का प्राधान्य होने के कारण ये इन्द्रियोत्तेजक एवं अश्लीलता के प्रेरक हैं। फिर भी इन वर्णनों में सौन्दर्य–चेतना को उद्बुद्ध करने की अपूर्व क्षमता के साथ ही हृदय पर प्रभाव डालने की अद्भुत शक्ति है। इसी कारण सौन्दर्य के सरस चित्र अंकित करने में बिहारी सर्वोत्कृष्ट कवि माने जाते हैं।''

बिहारी ने अपने काव्य में संयोग के साथ–साथ वियोग वर्णन भी उत्कृष्ट कोटि का किया है। कुछ मानों में तो उनका वियोग उनके संयोग से अधिक श्रेष्ठ बन गया है। वियोग वर्णन की दृष्टि से बिहारी ने पूर्व राग, मान, प्रवास और करुण इन चारों प्रकार के विरहों का वर्णन किया है। उनके विरह वर्णन में ऊहात्मक व्यंजना का समावेश हुआ है जो फारसी के प्रभाव के कारण है। विरह में नायिका इतनी क्षीण हो गई है कि साँस के साथ छह–सात हाथ आगे आती और पीछे जाती है। मानो हिन्डोले पर झूल रही हो –

इत आवति, चलि जाति उत, चली छसातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहे, लगी उसासन साथ।।

तो वहीं दूसरी ओर नायिका विरह के ताप की स्थिति यह है कि जाड़े की रात्रि में भी सखियाँ उसे गीले कपड़े से ढक कर उसके विरह को शांत करने का प्रयास करती हैं तो दूसरी ओर उसके विरह के ताप को शीतल करने के लिए जब उसके ऊपर गुलाब जल छिड़का जाता है तो वह भी छन्न–छन्न की आवाज के साथ उड़ जाता है –

औंधाई सीसी सु लखि, बिरह बरति बिललात।
बीचहिं सूखि गुलाब को, छींटो छुओ न गात।।

यही नहीं विदेश में बैठा नायक पथिक के मुँह से विरहिनी के गाँव में लुएँ चलने की बात सुन कर उसे जीवित समझ लेता है –

सुनत पथिक मुँह माह निसि, लुएँ चलत वहि गाम।
बिन बूझे बिन ही कहैं, जियत वियारी बाम।।

बिहारी ने वियोग श्रृंगार में मान, प्रवास आदि भावों के भी दोहे लिखे हैं। उन्होंने नायिका की विभिन्न विरह जनित काम दशाओं का सुन्दर वर्णन किया है जिसका वर्णन यहाँ पाठ्यक्रम के अनुकूल नहीं है। उन्होंने अपने विरह को प्रगाढ़ता प्रदान करने के लिए प्रकृति का भी सहारा लिया है। इसलिए उनके साहित्य मे प्रकृति वर्णन भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। प्रकृति वर्णन की दृष्टि से ऋतु, चन्द्रमा, पवन आदि का वर्णन उद्दीपन के रूप में ही हुआ है पर जहाँ स्वतंत्र रूप से प्रकृति चित्रण हुआ है वहाँ बिहारी ने मौलिकता का प्रदर्शन किया है। सच तो यह है कि उनका स्वतंत्र प्रकृति चित्रण उद्दीपन रूप के प्रकृति चित्रण से श्रेष्ठ है। उन्होंने मुक्त प्रकृति चित्रण में व्यंजना शक्ति से बड़ा काम लिया है। जेठ की दुपहरी की भयंकरता का आभास निम्न दोहे से भली–भाँति हो जाता है –

बैठि रही अति सघन बन, पैठि सदन तन–माहि।
निरखि दुपहरी जेठ की, छाहहुँ चाहत छाँह।।

अतः संक्षेप में कह सकते हैं कि बिहारी का संयोग वर्णन न केवल उनके समय का प्रतिबिम्ब है बल्कि उनकी मानसिकता का द्योतक भी है। संयोग और वियोग दोनों ही क्षेत्रों में बिहारी ने जो अभिव्यक्तियाँ की हैं वे अधिकांशतः चमत्कारपूर्ण हैं और साथ ही साथ मन को बाँधने में अधिक सफल हुई हैं। फिर भी बिहारी के पक्ष में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उनकी अत्यधिक रसिकता ने आज भी उनकी सतसई को प्रासंगिक बना रखा है। श्रृंगार वर्णन कितने ही कवियों ने किया है किन्तु सभी का श्रृंगार बिहारी जैसा हो यह आवश्यक नहीं। कालिदास भी श्रृंगार वर्णन करते हैं, प्रसाद ने भी श्रृंगार के क्षेत्र में हस्तक्षेप किया किन्तु इनकी रसिकता में सहृदयता का अंश अधिक है। बिहारी का संयोग उनके वियोग की तुलना में अधिक प्रभावी करता है तो कभी वियोग संयोग पर भारी पड़ता है।

9.3.2.2 सतसई में भक्ति पक्ष :

बिहारी राजभक्त कवि नहीं थे। वे एक भक्त कवि ही थे। रीति काल के वैष्णव बिहारी अपनी सतसई का प्रारम्भ मंगलाचरण के

रूप में इस दोहे से करते हैं –

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि साइ।

जा तन की झाईं परै स्याम हरित दुति होई।।

भक्ति भावना की दृष्टि से हम भक्तों को दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं एक तो वे भक्त कवि हुए, जिन्होंने अपने साहित्यिक जीवन के आदि से अन्त तक ब्रह्म, माया और जीव का ही गुणगान किया जैसे शंकराचार्य। दूसरी श्रेणी में उन भक्त कवियों को लिया जा सकता है जिन्होंने मूलतः श्रृंगार आदि रसों में काव्य रचना की। परन्तु साथ ही साथ यदा कदा भक्ति भावना से अभिभूत होकर राम अथवा कृष्ण का चरित्र गान भी किया है। इस वर्ग के अन्तर्गत सूर, तुलसी, बिहारी, देव तथा पदमाकर आदि को लिया जा सकता है। द्वितीय श्रेणी के भक्त कवियों ने अपने मानसिक, परिष्कार एवं आध्यात्मिक शांति लाभ के लिए ही भक्ति भावपूर्ण रचनाओं का निर्माण किया। किसी आश्रयदाता आदि के मनोरंजन के लिए नहीं। इनकी भक्ति किसी विशेष मतवाद अथवा साम्प्रदायिक सिद्धान्त से बँध कर नहीं चली है। इसका कारण भी स्पष्ट है सैद्धान्तिक एवं दार्शनिक प्रतिपादन बुद्धि के क्षेत्र की वस्तु है। कवि हृदय का धनी होता है। भक्ति का सम्बन्ध हृदय से होता है अतः इन कवियों की भक्तिपरक रचनाओं में जो भी सिद्धान्त जहाँ कहीं प्रतिपादित हुआ है वह अनायास ही हुआ है। इसका यह आशय कभी नहीं निकालना चाहिए कि भक्त कवियों ने ज्ञान का खण्डन किया है। तुलसी, सूर, कबीर आदि अनेक भक्त कवियों के ऐसे दोहे तथा पद गिनाए जा सकते हैं जिनमें उच्च कोटि के दार्शनिक मतों का प्रतिपादन किया गया है। उदाहरणार्थ बिहारी का यह सोरथा देखा जा सकता है –

हौं समुझ्यो निरधार, यह जगु काँचौ काँच सौ।

एकै रूपु अपार, प्रतिबिम्बित लखियतु तहाँ।।

अनेक समीक्षक इसी दोहे के आधार पर बिहारी को प्रतिबिम्बवादी मानते हैं परन्तु बिहारी में ऐसा कोई पूर्वाग्रह नहीं है। वो तो मूलतः कृष्णभक्त हैं। कृष्ण भक्ति का उनका इतना व्यापक परिप्रेक्ष्य है जिसमें सभी साम्प्रदायिक एवं दार्शनिक मत समाहित हो जाते हैं –

अपने अपने मत लगे, वादि मचावत सोरु।

त्यौं त्यौं सबको सेइबौ, एकै नन्दकिशोर।।

इससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि बिहारी के यहाँ ज्ञान और भक्ति में दार्शनिक निकटता एवं साम्प्रदायिक मतों में तथा निर्गुण एवं सगुण में कोई ऊँच–नीच की स्पष्ट विभाजन रेखा नहीं है। वे निर्गुण की व्यापकता के विषय में कहते हैं –

दूरि भजत प्रभु पीठि दै, गुन विस्तारन काल।

प्रगटन निरगुन निकट रुहि चंग रंग गोपाल।।

इसके विपरीत दूसरी ओर सगुण पक्ष में वे इतना बलपूर्वक कहते हैं कि उनके यहाँ मुक्ति भी धूलि सात हो जाती है –

जो न जुगति पिय मिलन की, धूरि मुकुति मुँह दीन।

जो लहियै सँग सजन तौ धरत नरकहूँ की न।।

उसे तो मोक्ष तभी अभीष्ट हो सकता है जबकि भगवान् स्वयं अपने सगुण रूप में आकर उससे मिलें। वहाँ ऐसे मोक्ष अथवा ब्रह्म की अपेक्षा नहीं की गई है जो अतीन्द्रिय एवं लोकातीत है –

मोहू दीजै मोषु, जो अनेक अधमनु दियौ।

जौ बाँधै ही तौषु, तो बाधै अपने गुननु।।

यद्यपि रीति काल के अधिकांश कवियों पर राधावल्लभ सम्प्रदाय का प्रभाव पड़ा है। परिणामस्वरूप ब्रज बिहारी श्रीकृष्ण और राधा तथा गोपिकाओं का ही वर्णन उन्होंने अपना अभीष्ट माना। तथापि कुछ कवियों ने राधा कृष्ण के साथ ही साथ सीता राम की उपासना भी की। यह परम्परा सूर, तुलसी के समय से चली आ रही थी। सेनापति, पदमाकर, देव और बिहारी ने भी उसी परम्परा का निर्वाह किया। बिहारी ने कृष्ण और राम दोनों की ही लीलाओं को अपना विषय बनाया –

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परै, स्यामु हरित दुति होइ।।
तजि तीरथ हरि राधिका, तन दुति करि अनुरागु।
जिहिं ब्रज केलि निकुँज मगु, पग–पग होत प्रयागु।।

अब उनकी रामचन्द्र के प्रति जो आस्था है, उसका वर्णन भी देखिए –

बन्धु भए का दीन के, को तार्‌यो रघुराइ।
तूठे–तूठे फिरत हौं, झूठे बिरुद कहाई।।
यह तिरिया नहिं और की, तू करिया वहि सोधि।
पावन नाव चढ़ाइ जिहिं, कीन्हे पार पयोधि।।

इतना सब कुछ होने पर भी यदि आलोचक बिहारी को केवल कृष्ण भक्त कहते हैं तो वह उनकी मानसिक संकीर्णता ही है। वास्तव में तो बिहारी जब अपने आराध्य में लीन होते हैं तो वे राम और कृष्ण का भेद ही भूल जाते हैं और कह बैठते हैं –

कौन भाँति रहिहै बिरदु, अब देखिवौ मुरारि।
बीवे मौसो आइकैं, गीधे गीधहि तारि।।

यहाँ मुरारी श्रीकृष्ण का विशेषण है और गीध उतारने वाले श्रीराम। स्थूल रूप में देखने पर दोनों अलग–अलग परन्तु सूक्ष्मतः दोनों ही भगवान् विष्णु के अवतार हैं और बिहारी इसी सूक्ष्म तत्व को महत्त्व देते हैं। बिहारी से पूर्व भक्तिकालीन कवि सूर और तुलसी भी इस भेद को मिटा चुके हैं।

कबीर की भाँति बिहारी ने भी भक्तों के बाह्य आडम्बर की खुल कर भर्त्सना की है। जप, माला, छापा, तिलक आदि को उन्होंने कभी महत्त्व नहीं दिया। वे अन्तःकरण की शुद्धता को महत्त्व देते थे। उनका मानना था कि जब तक अन्तःकरण पवित्र नहीं होगा तब तक भक्त कभी भगवान् की शरण प्राप्त नहीं कर सकता। प्रवेश द्वार यदि कपटों के कपाटों से बन्द रहेगा तो उसमें हरि अथवा ब्रह्म प्रवेश कैसे कर पाएगा –

जप माला छापै तिलक, सरै न एकौ कामु।
मन काँचै नाचै वृथा, साँचै राँचै रामु।।
सौ लगि या मन सदन में, हरि आवै किहि बाट।
निपट विकट जौ लौ लगे, खुले न कपट कपाट।।

बिहारी के भक्तिपरक दोहों में हास्य एवं सखाभाव की स्तुतियाँ भी देखने को मिलती हैं। जहाँ उन्होंने दास्य भाव की रचना की है वहाँ स्वभावतः 'सूरसागर' एवं 'विनय पत्रिका' के पदों की सी दीनता, करुणा एव पापकर्मों का स्पष्ट उल्लेख करने की ओर भी प्रवृत्त हुए हैं –

कीजै चित सोई तरे, जिहिं पतितन के साथ।
मेरे गुन–औगुन–गुननु गनौ न गोपीनाथ।।
हरि कीजतु तुमसौं यहै, विनती बार हजार।
जिहि तिहि भाँति डर्‌यौ रहौं, पर्‌यौ रहौं बरबार।।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि बिहारी मूलतः श्रृंगारी कवि होने के साथ ही एक सहृदय भक्त कवि थे। भक्ति को दार्शनिकता के क्षेत्र से भिन्न करने का कोई मापदण्ड नहीं है। वस्तुतः भक्ति का अगला सोपान ही दर्शन का क्षेत्र है। बिहारी ने

शुद्धान्तःकरण होकर इस जीव और ब्रह्म के झमेले को इस प्रकार अपने दोहों में अलंकारिक ढंग से प्रस्तुत कर दिया है कि उसकी हम मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं –

जगतु जनायौ जिहिं सकतु, सो जगु जान्यौ नाहिं।
ज्यौं आँखनि सब देखिहे, आँखि न देखी जाहिं।।
या भव पारावार कौं, उलेघि पार को जाइ।
तिय छवि छाया–आहिनी, असै बीच ही आइ।।

बिहारी तो यहाँ तक कहते हैं कि ईश्वर का स्मरण केवल दुःख में ही नहीं करना चाहिए और सुख में उसे भूल नहीं जाना चाहिए। उसे सदैव अपने मन में संजोकर रखना चाहिए –

दीरघ साँस न लेहु दुख, सुख साइँहि न भूलि।
दई दई क्यौं करतु है, दई दई सु कबूलि।।

अतः ये कहा जा सकता है कि बिहारी की भक्ति भावना भक्तिकाल के किसी भी भक्त कवि से कम नहीं है। वह अलग बात है कि वे एक श्रृंगारी कवि के रूप में जाने जाते हैं। परन्तु यह निश्चित है कि उनकी भक्ति भावना रीति काल के कवियों में सर्वश्रेष्ठ है।

सतसई में नीति तत्व :

बिहारी सतसई की रचना से पूर्व ही हिन्दी, अपभ्रंश, प्राकृत और संस्कृत भाषा के साहित्य में नीतिपरक काव्य का पर्याप्त सृजन हो चुका था। काव्य शास्त्र की दृष्टि से नीतिपरक कविता में काव्य के उत्तम स्वरूप को उपदेशों की नीरसता आक्रान्त कर देती है। यही बात बिहारी के ऊपर भी शत–प्रतिशत लागू होती है। नीति शब्द जिन अर्थों में प्रयुक्त होता है उन सभी के मूल में यह भाव निहित है कि जीवन यात्रा को संयम और सुखपूर्वक कैसे आगे बढ़ाया जाए। नीति का अर्थ ही है ले जाना या आगे बढ़ाना। हमारे यहाँ धर्म को भी जीवन को आगे बढ़ाने वाला प्रेरक तत्व माना गया है। धर्म के अन्तर्गत लौकिक लाभ–हानि अथवा व्यवहार की दृष्टि सदैव कोई प्रतिमान बन कर नहीं आती है। उसके स्वरूप में चिरन्तनता है किन्तु नीति में चिरन्तनता नहीं है। बिहारी भी नीतिपरक दोहे लिख कर यह विवेचन करने के लिए प्रेरित करते हैं कि उनके दोहों में नीति का उल्लेख हुआ है। वस्तुतः वे एक श्रृंगारी कवि थे। अतः श्रृंगार के अतिरिक्त जो भी विषय उनके दोहों में उद्वेलित है वह भक्ति और नीति है। बिहारी के नीतिपरक दोहे भी अपवाद स्वरूप लिखे गए हैं। जितने भी थोड़े–बहुत दोहे हैं वे उन्हें नीतिकार सिद्ध नहीं करते। हाँ यह अवश्य है कि उनकी नीति और भक्ति के साथ मिल कर वे उनके काव्य को भक्ति, रीति और नीति की त्रिवेणी बना देते हैं। बिहारी की नीतिपरक उक्तियाँ विदुर और चाणक्य की नीतिपरक उक्तियों के समान नहीं हैं। वे भोग–विलास, राग–रंग और सामान्य जीवन के लिए आपेक्षित व्यवहार को परिभाषित करती हैं। उनकी नीति में भी नेपथ्य से श्रृंगार झाँकता दिखाई देता है –

सम्पति केस सुदेस नर नमत दुहुक इक जानि।
विभव सतर कुच नीच ना परम विभव की हानि।।
जेतौ संपति कुपनि की तेती सूमति जोर।
बढ़त जात ज्यों–ज्यों उरज त्यों–त्यों होत कठोर।।
संगति दोषु लगे सबनु कहेति साँचे बैन।
कुटिल बक भ्रू संग भए कुटिल बंक गति नैन।।

इन दोहों को ध्यानपूर्वक पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि लगभग प्रत्येक दोहे के मूल में श्रृंगार है। नीति तो जैसे गौण हो गई है। इसी प्रकार बिहारी के वे दोहे जैसे – ''नहिं पराग नहिं मधुर मधु'' और ''दिन दिन देखे वे कुसुम'' भी श्रृंगार प्रेरित हैं। बिहारी ने राजनैतिक पराधीनता एवं समाज तथा व्यक्ति के जीवनादर्शों की पतनशीलता के प्रति सजग दृष्टि थी। हिन्दू राजाओं ने पराधीन वृत्ति के कारण उनमें विवेकशून्यता बढ़ गई थी। यही कारण था कि वे जहाँ एक ओर अपने ही लोगों को शोषण के चक्र में पीसते रहते थे और अपने को शूरवीर समझते थे वहीं दूसरी ओर निष्क्रियता और जड़ता ने उनके मनो मस्तिष्क को शिथिल कर दिया था। ऐसे राजाओं को

सम्बोधित करते हुए बिहारी ने कहा था –

स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा, देखि विहंग बिचारि।
बाज पराये पानि परि तू पच्छिनु न मारि।।
दुसह दुराज प्रजानि कौ, क्यों न बढ़े अति द्वन्द्व।
अधिक अंधेरौ जग करै, मिलि मावस रवि चन्द।।

इन दोहों के माध्यम से वे शोषक राजाओं को चेतावनी देते हुए प्रतीत होते थे। बिहारी के दोहों में संगति का दोष, नीच का प्रभाव, धन का अहंकार, गुणो का आदर, वैभव से बिगड़ा स्वभाव, सच्चे प्रेमी का स्वभाव, समय का फेर, पद का लोभ आदि विषयों पर नीतिपरक उक्तियाँ कही –

मरतु प्यास पिंजरा पर्‌यौ, सुआ समै के फेर।
आदरु दै दै बोलियत, बायसु बलि की बेर।।
गहै न नैकौ गुन–गरबु, हँसौं सबै संसारु।
कुच उच पद–लालच रहै, गरैं परैं हूँ हारु।।
नर की अरु नल नीर की गति एकै करि जाइ।
जे तौ नीचौ ह्वै चलै, ते तौ ऊँचौ होइ।।
अरे परेखै को करै, तुही विलोकि विचारि।
किहिं नर, किहिं सर राखियैं, खरैं बढ़ै परिवारि।।
को कहि सके बड़ेनु सों, लखे बड़े हू भूल।
दीनै दई गुलाब की, इनु डारनु ये फूल।।
बसै बुराई जासु तन, ताही कौ सनमानु।
भलौ भलौ कहि छोड़िये, खोटे ग्रह जपु दानु।।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बिहारी सतसई श्रृंगार से ओतःप्रोत रचना है। इसमें भक्ति और नीति के दोहे भी आए हैं परन्तु इस आधार पर उन्हें भक्त कवि या नीतिकार नहीं कहा जा सकता। समीक्षक भले ही कहें कि बिहारी सतसई में श्रृंगार, भक्ति और नीति की त्रिवेणी प्रवाहित है परन्तु मूलतः यह श्रृंगार की सरिता ही है। जिस प्रकार नदी के किनारों पर विविध प्रकार की वनस्पति उग आती है वैसे ही श्रृंगार की नदी के किनारों पर भक्ति और नीति की वनस्पतियाँ यत्र तत्र उग आई हैं। फिर भी निष्पक्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि बिहारी सतसई में एक भक्त एक नीतिज्ञ और एक रसिक तीनो की कवि रूपों के दर्शन हो जाते हैं।

(2) बिहारी ने किस दोहे से राजा जयसिंह को नई रानी के मोह से मुक्त किया और क्यों?

.....

.....

.....

.....

(3) बिहारी के दीक्षा गुरु कौन थे?

(क) नरहरिदास

अभिव्यंजना शिल्प :

'बिहारी सतसई' हिन्दी साहित्य के उन अनमोल रत्नों में से है जो वस्तु, उदात्त शैली और अभिव्यंजना कौशल के बल पर आज भी अपनी महत्ता बनाए हुए है। इसमें मुक्तक काव्य की समग्र विशेषताएँ अपने उच्चतम रूप में दिखाई देती हैं। यह वह कृति है जिसके अन्तर्गत काव्य के दोनों पक्ष अनुभूति पक्ष और अभिव्यक्ति पक्ष का समुचित सामंजस्य देखने को मिलता है। कवि जो अनुभव करता है उसे अपनी अनुभूति में ढाल कर अभिव्यक्ति के द्वार तक ले जाता है। अनुभूति कितनी ही परिपक्व हो यदि अभिव्यक्ति शिथिल है तो काव्य प्रभावी नहीं बन सकता अतः अनुभूति का खरापन जितना आवश्यक है उतनी ही आवश्यकता अभिव्यक्ति की प्रसन्नता की भी है।

'बिहारी सतसई' एक श्रृंगार प्रधान रचना है परन्तु इसमें भक्ति और नीति के दर्शन भी होते हैं। बिहारी रीति काल के एक ऐसे कवि थे जो उस काल के अन्य कवियों की भाँति वाणीगत कौशल, उक्ति–वैचित्र्य भाषा के खरेपन, उसकी मधुरता, अलंकृति और चित्रमयता मे विश्वास करते थे। जहाँ एक ओर रीति बद्ध कवियों की जमात है वहीं भले ही कुछ लोगों ने बिहारी को रीतिसिद्ध नाम दे दिया हो किन्तु वे रीति परम्परा के श्रेष्ठ कवियों में गिने जाते हैं। उनके काव्य में भाषा अलंकार, छन्दवैभव, काव्य रूप, बिम्ब विधान आदि प्रमुख हैं। हम 'बिहारी सतसई' के कलात्मक सौन्दर्य का निरूपण करने के लिए इन्हीं बिन्दुओं पर प्रकाश डाल रहे हैं।

काव्य भाषा :

'बिहारी सतसई' एक ऐसे कवि की रचना है जो ब्रज भाषा का कुशल कवि कहा जा सकता है। भाषा का निर्माण, शब्दों के योग से होता है और शब्द कई प्रकार के हो सकते हैं। 'बिहारी सतसई' का शब्द विधान भी एक जैसा नहीं है। शब्दावली भले ही ब्रज भाषा की हो किन्तु अन्य भाषाओं के शब्द भी सतसई में देखने को मिलते हैं और उनकी संख्या कम नहीं है।

'बिहारी सतसई' में मुख्य रूप से ब्रज भाषा के शब्दों का प्रयोग हुआ है। ये शब्द भी दो प्रकार के हैं साहित्यिक और बोलचाल के या ग्रामीण। जैसे– चुनरी, दिठौना, जोबन, आँखि, रह्यौ, पर्यौ, लह्यौ, भौन, छवि–छाक, बिजुरी, चितवनि, मुसकाइ, बतियाँ आदि साहित्यिक ब्रज भाषा के शब्द हैं जबकि मरक, पजरै, पून्यौ, बुरै, गोरटी, गदराने, औटे आदि ग्रामीण एवं बोलचाल के शब्द हैं जिनका बिहारी ने अपने साहित्य में प्रचुरता से प्रयोग किया है। ब्रज भाषा के साथ–साथ बिहारी ने संस्कृत शब्दों का भी खुल कर प्रयोग किया है। संस्कृत के तत्सम और तद्भव दोनों रूप बिहारी की भाषा में दिखाई देते हैं। जैसे– विषम, चित्त, अनुरागी, सम्पत्ति, भृकुटि, कुण्डल, किंकिणी, तन्त्रीनाद, रति, पावत, पत्रा, तिथि, अद्वैता, प्रेम पयोधि आदि तत्सम शब्द हैं जबकि परस, उर्वशी, सरद, श्यामल, सीतकर, जतन, तरुन, सिरमौर, ग्रीषम आदि तद्भव शब्द बिहारी के काव्य में देखे जा सकते हैं। इसके अलावा बिहारी ने तत्कालीन विभाषाओं के शब्दों को भी अपने साहित्य में यत्र–तत्र उकेरा है जिनमें अवधि, बुन्देलखण्डी, खड़ी बोली आदि के शब्द प्रमुख हैं। जैसे– अवधी के लीन, कीन, दीन, लजियात आदि बुन्देलखण्डी के स्यों(साथ), घैरूं (बदनामी की बात), चाला (द्विरागमन), बीधे (उलझे) आदि शब्द तथा खड़ी बोली के चली, बैठी, उठी, उड़ी आदि शब्द उनके काव्य में मिल जाते हैं। ये वे शब्द हैं जो प्रायः सभी ब्रजभाषी कवियों के काव्य में देखने को मिलते हैं। इसके अतिरिक्त सभी, गरूर, इजाफा, कबूल, रोज, बदरा, बाज, गुलाब, खूनी आदि अरबी फारसी शब्दों को भी 'बिहारी सतसई' में देखा जा सकता है।

बिहारी की भाषा की यह विशेषता है कि उसमें भावों का अनुवर्तन होता चलता है। परिणाम यह निकलता है कि व्यापक शब्द भण्डार शब्द की आत्मा तक का परिचय चित्रोपम शैली के माध्यम से पाठक या श्रोता तक पहुँचा देते हैं। बिहारी के काव्य की एक और विशेषता है वह है नाद सौन्दर्य। दोहे को पढ़ कर या सुन कर ही एक संगीत–सा वातावरण में घुलता महसूस होता है। जैसे –

रनित भृंग घंटावली, झरत दान मधुनीर।
मंद–मंद आवत चल्यो, कुंजर–कुंज समीर।।
ज्यौं–ज्यौं आवति निकट निसि, ज्यौं–त्यौं खरी उताल।
झुमकि–झुमकि टहलैं करे, लगी रहचटैं लाल।।

बिहारी की भाषा की एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उसमे लोकोक्ति और मुहावरों का प्रयोग सहज ही हो जाता है। इसके लिए कवि को पृथक से कोई प्रयास नहीं करना पड़ता जैसे– पानी में का लोनु, कान की पातरी, दई–दई करना, आँख लगना, पीठ देना, दृढ़ लगना, लट्टू होना, चित्त चढ़ना, नाक चढ़ी रहना आदि मुहावरे तथा ''जीभ निबौरी क्यों लगै बौरी चखि अंगूर'', ''मुकुट को पाँव में पहनना'' आदि लोकोक्तियाँ बिहारी के काव्य में सहज ही आ जाते हैं। इसके अतिरिक्त ध्वनि सिद्धान्त तथा भाषा की सामासिकता का प्रयोग भी बिहारी की काव्य भाषा में दिखाई देता है।

बिहारी अपने युग के श्रेष्ठ कवि बन सके इसका मुख्य कारण उनकी भाषा और उसकी समाशक्ति तथा कल्पना की समाहार शक्ति ही है। वस्तुतः कहा जा सकता है कि अपनी भाषा के दम पर ही बिहारी ने रीतिकाल के श्रेष्ठ कवियों में अपना नाम अंकित किया है।

9.4.2 अलंकार सौन्दर्य :

संस्कृत काव्य शास्त्र में जितने भी सम्प्रदाय विकसित हुए उन सभी ने अपने–अपने सिद्धान्तों को काव्य की आत्मा कहा है। गम्भीरतापूर्वक देखने से दो प्रकार के विचारक सामने आते हैं। एक तो वे जो काव्य की आत्मा 'रस' और 'ध्वनि' को मानते हैं और दूसरे वे जो 'अलंकार, रीति और वक्रोक्ति' को काव्यात्मा स्वीकार करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन सबका अपना–अपना महत्त्व है। किन्तु यह निर्विवाद है कि जिस प्रकार मानव शरीर में आत्मा का महत्त्व है उसी प्रकार काव्यों में अलंकारों का महत्त्व है। बिना अलंकार के काव्य

की कल्पना नहीं की जा सकती। हिन्दी के रीतिकालीन कवि अलंकारवादियों से बहुत प्रभावी रहे हैं। यही कारण है कि 'बिहारी सतसई' में भी अलंकार के दोनों रूपों का (शब्दालंकार और अर्थालंकार) का प्रयोग चमत्कारपूर्ण ढंग से हुआ है। बिहारी ने अपनी सतसई में अनुप्रास, यमन, श्लेष, वक्रोक्ति और वीप्सा आदि अलंकारों का प्रयोग अधिकता से किया है। उदाहरणार्थ –

अनुप्रास :

रससिंगार–मंजनु किए, कंजनु भंजनु दैन।
अंजनु रंजनु हूँ बिना खंजनु गंजनु नैन।।

यमक :

तो पर वारौं उरबसी, सुनि, राधिके सुजान।
तू मोहन कैं उर बसी ह्वै उरबसी–समान।।

श्लेष :

अजौं तरयौना ही रह्यौ श्रुति सेवत इक–रंग।
नाक–बास बेसरि लह्यो बसि मुकुतनु कैं संग।।

श्लेष–मिश्रित वक्रोक्ति :

चिरजीवौं जोरी जुरै क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि, ए बृषभनुजा, वे हलधर के बीर।।

इसी प्रकार अर्थालंकारों में बिहारी ने उपमा, रूपक, स्मरण, सन्देह, भ्राँतिमान, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, दीपक, दृष्टान्त, व्यतिरेक, समासोक्ति, विरोधाभास, विभावना आदि अलंकारों का प्रयोग अपनी सतसई में किया। उदाहरणार्थ –

उपमा :

छती नेहु कागर हियैं, भई लखाइ न टाँकु।
बिरह–तचैं उघर्‌यौ सु अब सेंहुड़ केसो आँकु।।

स्मरण :

सघन कुंज–छाया सुखद सीतल सुरभि–समीर।
मनु ह्वै जातु अजौं वहै उहि जमुना के तीर।।

रूपक :

तिय–तिथि तरुन–किसोर–वय पुन्यकाल–सम दोनु।
काहूँ पुन्यनु पाइयतु वैस सन्धि–सन्क्रोनु।।

सन्देह :

चकी जबी सी ह्वै रही बूझैं बोलति नीठि।
कहूँ डीठि लागी लगी कै काहू की डीठि।।

भ्राँति या भ्रम :

नाचि अचानक हीं उठे बिनु पावस बन मोर।
जानति हौं, नंदित करी यह दिसि नन्द किसोर।।

उत्प्रेक्षा :

मोरमुकुट की चंद्रिकनु यौं राजत नंदनंद।
मनु ससि सेखर की अकस किय सेखर सत चंद।।

अतिशयोक्ति :

छाले परिबे कैं डरतु सकैं न हाथ छुवाइ।
झझकत हियैं गुलाब कैं झंवा झँवैयत पाइ।।

दृष्टान्त :

कीनैं हूँ कोटिक जतन अब कहि काढ़ै कौनु।
भो मन मोहन रूप मिलि पानी मैं कौ लौनु।।

विरोधाभास :

तो लखि मो मन जो लही, सो गति कही न जाति।
ठोड़ी–गाड़ गडयौ तऊ उड्यौ रहै दिन रात।।

समग्र विवेचन के बाद यह कहा जा सकता है कि बिहारी की अलंकार योजना में कहीं–कहीं भले ही कल्पना और चमत्कारप्रियता दिखाई देती हो किन्तु अधिकांशतः उनके दोहों में सहज अलंकार ही स्थान पाते नजर आते हैं। अलंकार सौन्दर्य की दृष्टि से बिहारी का साहित्य अपने समकालीन साहित्य में श्रेष्ठ है।

छन्द विधान :

छन्द शास्त्र की दृष्टि से अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि बिहारी ने मुख्यतः 'दोहा' छन्द में ही रचना की है। कहीं–कहीं पर 'सोरठा' नामक छन्द का भी उन्होंने प्रयोग किया है जो दोहे से मिलता–जुलता है। यह सभी जानते हैं कि दोहे को यदि उलटा कर दिया जाए तो वह सोरठा बन जाता है। दोनों ही मात्रिक छन्द हैं। दोनों में कुल मिला कर 48 मात्राएँ होती हैं। दोहे में 13 तथा 11 तथा सोरठे में 11 तथा 13 मात्रा पर यति होती है। दोहे के दूसरे तथा चतुर्थ एवं सोरठे के प्रथम तथा तृतीय चरण में अन्त्यानुप्रास होता है। बिहारी एक मुक्तक रचनाकार हैं। मुक्तक कविता की यह पहली शर्त होती है कि उसमें छोटे से छोटे छन्द का प्रयोग होना चाहिए इसलिए बिहारी ने दोहा और सोरठा छन्द ही अपने काव्य के लिए चुना। दूसरी बात यह है कि इसमें भाव व्यक्त करने की क्षमता अधिक होती है। थोड़े से शब्दों में बड़ी बात कह दी जाती है। इसीलिए बिहारी के दोहों के लिए कहा जाता है –

सतसैया के दोहरे, ज्यों नाविक तीर।
देखन में छोटे लगें, घाव करैं गम्भीर।।

बिहारी और छन्दों में भी कविता लिख सकते थे परन्तु दोहे की विशेषता ओर उसके प्रति बिहारी के मोह ने उसे दोहे के आसपास ही रखा। प्रश्न होता है कि बिहारी के दोहों में वे कौनसी विशेषताएँ हैं जो ''घाव करें गम्भीर'' को युक्ति युक्त सिद्ध करती है। इसका स्पष्ट उत्तर है बिहारी की समास–प्रधान पदावली तथा कल्पना की समाहार शक्ति। जिसके माध्यम से कवि ने 'गागर में सागर' भरने का उद्योग किया है। वे एक रस सिद्ध कवि थे। उनके मनो–मस्तिष्क में विपुल कल्पनात्मक उद्भाविका शक्ति थी। वे जब भी किसी भाव को दोहे में निबद्ध करते थे तो अनेक सुकुमार कल्पनाएँ आकर उनके दोहों का श्रृंगार करने लगती थीं। बिहारी ब्रज भाषा के अद्वितीय कवि थे। बड़े से बड़े तथ्य को दोहों की दो पंक्ति में व्यक्त करने की कुशलता उनमे थी। तभी तो मार्ग भ्रमित राजा जयसिंह को दो पंक्तियों के दोहे से वे सही मार्ग पर ले आए –

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।
अली कली ही सौ बाँध्यों, आगे कौन हवाल।।

बिहारी के दोहे छन्द शास्त्र के नियमों से कसे हुए हैं। उनके पूर्ववर्ती एवं परवर्ती कवियों के दोहों से ऐसा गठन और ऐसी कसावट प्रायः नहीं मिल पाती। कबीर, तुलसी, वृन्द, रसनिधि आदि कवियों के दोहों में न्यून पदत्व तथा अधिक पदत्व दोष मिल सकता है किन्तु बिहारी के दोहों में यह दोष ढूँढने पर भी नहीं मिल सकते। अन्य कवियों के दोहों में गति एवं यति सम्बन्धी दोष पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं पर बिहारी के दोहों में यह दोष नहीं है। इसका स्पष्ट कारण है कि बिहारी के दोहों की भाषा इतनी सशक्त, प्रांजल एवं अर्थगर्भा है कि वहाँ पर अन्य दोषों के लिए अवकाश ही नहीं मिलता। यही कारण है कि किसी अन्य कवि के दोहों में यदि ऐसी प्रांजलता और सशक्तता दिखाई देती है तो लोग भ्रमवश उसे बिहारी का दोहा मान लेते हैं। अतः अन्त में यह कहा जा सकता है कि छन्द की दृष्टि से बिहारी का साहित्य अपनी पूर्ण समृद्धि के साथ आज भी रसज्ञों को आनन्द से सराबोर करते हैं।

***सह–आचार्य**
हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय, उनियारा (टोंक)

संदर्भ ग्रन्थ

1. बिहारी सतसयी
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास. डा नगेन्द्र
3. भारतीय युग प्रवर्तियां. डा अग्रवाल
4 रीति काल कां इतिहासः प्रो सुदर्शन सिन्हा